# संस्कृत साहित्य और शुक्रनीति

डां. पूनम कुमारी संस्कृत (धर्मशास्त्र)

साहित्य समाज का दर्पण होता है क्योंकि समाज साहित्य के द्वारा ही अपने युग के विशेषताओं और व्यवस्थाओं का चित्रण करता है। इसके द्वारा किसी देश में समसामयिक सभ्यता एवं संस्कृति की झलक मिलती है। इससे हमें सामाजिक वातावरण का परिचय प्राप्त होता है। यथा मनुस्मृति के नियम एवं मान्यताएँ आधुनिक भारतीय समाज को मान्य नहीं है क्योंकि आज की संस्कृति, मनोवृतियॉ बदली हुई है! अतः हम कह सकते है कि साहित्य समाज के वास्तविक रूप को प्रतिबिम्बित करती है। इसी कारण इसे संस्कृति का वाहन के रूप में स्वीकार किया जाता है। संस्कृति चिन्तन, मनन, ध्यान आदि की साकार अभिव्यक्ति है।

हमारा संस्कृत साहित्य जीवन के विषम परिस्थितियों के भीतर से आनन्द की खोज में सदा संलग्न रहा है। आनन्द सच्चिदानन्द भगवान का विशुद्ध रूप है। भारतीय समाज का मेरूदण्ड है–गृहस्थाश्रम, अन्य आश्रमो की स्थिति गृहस्थाश्रम के उपर ही निर्भर है। हमारा आदिकाव्य रामायण गार्हस्थ धर्म की धुरी पर ही घूमता है। दशरथ का आदर्श पितृत्व, कौशल्या का आदर्श मातृत्व, सीता का आदर्श सतीत्व, भारत एवं लक्ष्मण का आदर्श भ्रातृत्व, सुग्रीव का आदर्श बन्धुत्व, हनुमान का आदर्श सेवाधर्म आदि भारतीय गार्हस्थ द्यर्म के ही विभिन्न अंगो की अभिव्यक्तियॉ है। हमारी संस्कृति का प्राण आध्यात्मिक भावनाए हैं! जो त्याग से अनुप्राणित, तपस्या से पोषित तथा तपोवन में संबधित है। इसमें प्रकृति का विविध स्वरूपों के प्रति सम्मान और सह–अस्तित्व का भाव सन्निहित है। इसमें लैगिक विषमता के प्रति विरोध तो नहीं परन्तु एक लैगिंक समरसता का भाव है।

संस्कृत विश्व का प्राचीनतम भाषा है। भारत की प्रायः सभी प्रान्तीय भाषाएँ संस्कृत से ही निकली है जो कि सम् उपसर्ग के साथ कृ धातु से बना है। इसका मौलिक अर्थ संस्कार की गई भाषा होता है। भाषा के अर्थ में इसका प्रयोग सर्वप्रथम वांल्मीकीय रामायण में किया गया है। वेद भाषा और लोक भाषा इन्हीं दो रूपों में संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है। संहिता तथा ब्राह्णों की रचना वेद भाषा में हुई जबकि लोक भाषा में बाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि की रचना है। संस्कृत साहित्य का सबसे श्रेष्ठ व्याकरण पाणिनि का माना जाता है जिसे अष्टाध्यायी कहते है। कुछ विद्वानों का मानना है कि प्रारभं में शिष्ट व्यक्तियों के द्वारा संस्कृत का व्यवहार किया जाता था। यास्क ने भी अपने निरूक्त में संस्कृत को बोलचाल की भाषा के रूप में स्वीकार किया है। विक्रम के हजारों वर्ष पूर्व से विक्रम के उदय काल तक संस्कृत निश्चित रूप से बोलचाल की भाषा थी।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य को हम दो भागों में रख सकते है– वैदिक संस्कृत साहित्य तथा लौकिक संस्कृत साहित्य। वैदिक संस्कृत साहित्य में धर्म की प्रधानता देखी जाती है जबकि लौकिक संस्कृति साहित्य में मुख्य रूप से लोकवृत–प्रधान है। लौकिक साहित्य में गद्य का ह्रास स्पष्टतया देखा

जा सकता है। वैदिक गद्य में जो प्रसार, जो प्रसाद एवं सौन्दर्य दिख पड़ता है, वह लौकिक संस्कृत के गद्य में नही देखा जा सकता। इसमें पद्य की प्रमुखता अधिक देखी जा सकती है। लौकिक साहित्य में संस्कृत भाषा को व्याकरण के नियमों से आबद्ध कर वैदिक काल की अपेक्षा अधिक संयत किया गया है। उपयुक्त विवेचन एवं विश्लेषण के उपरान्त इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि संस्कृत साहित्य की अपनी विशेष महत्ता है। यह प्राचीनता व्यापकता एवं अभिरामता के संदर्भ मे श्रेष्ठ मानी जा सकती है। तभी तो संसार के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद, उपनिषद्, पुराण आदि महत्त्वपूर्ण धर्म शास्त्र इसी भाषा में रहे है। श्रीमद्भागवत् सांक्षात् भगवान का स्वरूप है। इसी से भगवत्भक्त इसकी श्रद्वा भक्ति पूर्वक पूजन करते है।

संस्कृत साहित्य की यह अनोखी विशेषता है कि वह मानवमात्र के लिए कल्याण की भावना को अग्रसर करता है। समाज की भावना को दर्पणवत् प्रनिबिम्बित करने वाला साहित्य कितना भी आदर्शवादी हो, वह यथार्थता का चित्रण किये बिना नही रह सकता। उसकी व्याप्ति राष्ट्र की चाहर दिवारी के भीतर अपने को सीमित रखते है। इस लिए उनकी वाणी राष्ट्रीयता के परिबृंहण में लगी रहती है। जबकि संस्कृत के कविजन उदारता का आश्रय लेकर संकीणता को अपने पास फटकने नही देते। फलतः संस्कृत साहित्य विश्वबन्धूत्व की भावना से सर्वथा परिव्याप्त है। वैदिक ऋषि व्यक्ति और समाज के ऊपर उठकर सम्पूर्ण संसार के सुख–समृद्वि तथा मंगल की कामना करता है–

विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव।
यद् भद् तन्न आ सुव।।

अर्थात् हे देव सविता, समस्त पापकर्मो को हमसे दूर करो। हमारे लिए जो भद्र वस्तु कल्याणकारी पदार्थ हो उसे हमें प्राप्त कराइये। यजुर्वेद में कहा गया है –

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।

अर्थात् मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूँ। हमसे वे लोग मित्र की दृष्टि से परस्पर एक दूसरें को देखे। वस्तुतः मानवमात्र का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह एक दूसरे की सर्वथा रक्षा एवं सहायता करें सामान्यतः हम उन्हीं के कल्याण की कामना करते हैं। जिन्हें हम देखते हैं अपनी ऑखों से, परन्तु वैदिक ऋषि यही तक अपनी प्रार्थना को सीमित नहीं रखता, बल्कि वह निखिल विश्व के अदृश्य प्राणियों के भी प्रति वह भावना रखने का नम्र निवेदन करता है। ऋग्वेद तथा अर्थवेद में कई ऐसे विशिष्ट सूक्त है जिनमें विशेष रूप से विश्व–कल्याण की भावना परिव्याप्त है।

अयं निज परो वेति गणना लधुचेतसाम्!
उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्!

अर्थात् यह अपना है और वह पराया है ऐसी गणना क्षुद्र चितवाले प्राणियों की है! उदारचरतिवालों के लिए तो यह समस्त वसुधा ही एक कुटुम्ब है! विश्व भावना की अभिव्यक्ति इससे बढ़कर सुन्दर शब्दों में नहीं की जा सकती हैं!

मैं और मेरा घर और परिवार ,कुटुम्ब और संबंध सम्बन्धी और समाज,समाज और गॉव,गॉव और राष्ट्र , राष्ट्र और धरती, धरती और खगोल के बीच कहीं भी रिक्तता नहीं है, कुछ भी अन्यतर नहीं है! यह महाव्यापकता सृष्टि का नाभिकमल है, जहां से पेयरस अनादिकाल से रिसता हुआ अनन्तकाल तक प्रवाहित होता है, जड–चेतन, वायु जल वनस्पति और प्रणिमात्र में यह संमान भाव से विधमान है! यह परमतत्व है! वसुधैव कुटुम्बकम् पुथ्वी को एक परिवार होने का गौरव प्रदान करती है और यह ब्रहास्त्र सभी अस्त्रो से शक्तिमान ही नही श्रेष्ठ भी है! इस प्रकार की भावना तथा व्यवहार संस्कृत साहित्य के अन्दर विशेष रूप से देखने को मिलता है!

इस तरह संस्कृत साहित्य के संक्षिप्त अध्ययनोपरान्त अब हम शुक्रनीति से सम्बधित चर्चा के सबंध में बतलाना काफी कठिन है फिर भी इसमे वर्णित जाति व्यवस्था आचार–विचार ,मूर्तिकला भवनकला आदि को देखते हुए यह बतलाया जा सकता है कि यह गुप्तकाल के आसपास की रचना है डॉ. अल्तेकर ने इसकी रचना काल ईसा के अष्टम शतक के अन्तिम भाग में माना है।

नीति के बारे में कहा जाता है–

''नीयन्ते प्राप्यन्ते लभ्यन्ते अवगम्यनतेर्ध्मार्थ काममोक्षेपायां अनया अस्ययां वा नीतिः इति''

नय् धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से नीति शब्द निष्पन्न होता है! धर्म अर्थ तथा काम तथा मोक्ष इन चार पुरूषार्थो तथा इन्हें प्राप्त करने के उपायों का निर्देश है! जिसके द्वारा अथवा जिसमे होता है उसे नीति कहते हैं! उस प्रकार मानव जीवन के लक्ष्य की सिद्धि में , नीति के द्वारा ही उचित मार्ग का निर्देश होता है! नीति का विचार काफी व्यापक है ओर ऐसे व्यापक नीति विचार को नीतिशास्त्र कहते है! समाज में व्यक्ति, परिवार, जाति, वर्ग, राष्ट्र तथा संस्था को कैसा व्यवहार करना चाहिए कैसे रहना चाहिए इस संबंध में कतिपय विशेष नियम होता है जिन्हें नीतिशास्त्र कहते है! यह धर्म का एक भाग है सत्य, अहिंसा दया परोपकार, अस्तेय, औदार्य, मातृ पितृ, गुरू –भक्ति पातिव्रत्य, बन्धुभाव मनोनिग्रह जितन्दियत्व निलोभत्व, वचनबद्धता, समबुद्धि सहिष्णुता आदि नीति के तत्त्व हैं! त्याग संयम तप दया क्षमा शान्ति सत्यनिष्ठा इत्यादि दनैतिक गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को ही समाज ने वनदनीय पूजनीय माना है और विविध दूषणो से भरे व्यक्ति को निषेध किया है! अतः आचार को प्रथम धर्म कहा गया है !

आचार प्रथमो धर्मः

जैसा कि श्री कृष्ण ने भी कहा है–

यधदाचरति क्षेष्ठस्ततदेवेतरों जनः!

य यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते!!

अर्थात् श्रेष्ठ पुरूष जो जो आचरण करता है अन्य पुरूष भी उसको अनुसरण करता हैं! वह जो कुछ प्रमाण प्रस्तुत कर देता है समस्त मानव समुदाय उसी के अनुसार व्यवहार करने लग जाता है! इस प्रकार हिन्दु धर्मशास्त्र ने नीति नियमों को विशेष महत्त्व प्रदान किया है! अतः वेद उपनिषद् रामायण महाभारत स्मृति पुराणदि में नीति त्त्व का कथन हुआ है! मनुष्य धर्मनीति का आश्रय ग्रहण कर सुसंस्कृत हुआ है!

विषय की दृष्टि से नीति को मुख्यत दो भागों में विभाजित किया गया है राजनीति और धर्मनीति! अर्थ एवं कामविषयक नीति को राजनीति एवं धर्म व मोक्षविषयक नीति को धर्मनीति कहा जाता है! नीति के द्वारा फल के अनुरूप बीज का निर्देष प्राप्त होता है! अतएवं आदिकाल से ही मनुष्य को सही मार्ग दिखलाने के लिए नीति वचनों का प्रतिपादन होता आ रहा है! इस संस्कृत के विशाल वाड.मय में नीति वचनों का वृहत् भण्डार है! इसमे नीति के उपदेशों का शतशः संग्रह है इसका उद्देश्य समाज को स्वस्थ एवं संतुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को पुरूषार्थचतुष्टय की समुचित रीति से प्राप्ति करवाने के लिए नियमों का विधान देश काल और पात्र के संदर्भ में किया जाता है! संस्कृत साहित्य में नीति वर्णनपरक अनेक ग्रंथ उपलब्ध हेाते है! जिसमे रामायण महाभारत मनुस्मृति, शुक्रनीति, चाणक्यनीति, विदुरनीति, नीतिमंजरी, नीतिशतक आदि अनेक ग्रंथ रत्न प्राप्त होते हैं! चाणक्यनीति में मानव जीवन के सुधार हेतु विद्या को सर्वोपरि माना गया है–

नास्ति विघासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमः तपः।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसं सुखं।।

अर्थात् विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है सत्य के समान कोई तप नहीं है, रोग के समान कोई दुःख नही है तथा त्याग के समान कोई सुख नही है। महमति वदिुरजी ने अपनी विदुरनीति में राजनीति के रहस्य को बताते हुए यह स्पष्ट किया है कि जो राजा अपनी गोपनीयता सुरक्षित रखता है अर्थात् उसकी भावी योजनाओं की जानकारी अत्यन्त गोपनीय होती है , उसे तभी लोग जान पाते हैं जब वे योजनाएँ अपना परिणाम दे देती है, तो ऐसे राजा की राजनीति कभी असफल नहीं होती। मानव को अपने सच्चे हित के विषय में कभी निराश नहीं होना चाहिए! भाषा ही मनुष्य को अपने सच्चे हित के विषय में कभी निराश नहीं होने देता! भाषा ही मनुष्य को जिलाती है। भगवान के प्रति विश्वास देकर मनुष्य में असीम बल देता है और फिर उसका सत् प्रयत्न पुनः आंरभ हो जाता है आचार्य शुक्राचार्य के नाम से उपलब्ध शुक्रनीति नामक ग्रंथ अत्यन्त प्रामाणिक और प्रसिद्ध है। इसमें लोकव्यवहार का ज्ञान राजधर्म दण्डविधान राजा, तथा उसके कर्तत्व्य राजायांग मंत्री – परिषद, भृत्यवर्ग, कोष, बल ,राष्ट्र, वेद, पुराण, दर्शन, स्मृति आदि के लक्षणो का समावेश है ! पूरी शुक्रनीति में पॉच अध्याय तथा लगभग 2200 श्लोक है! लघु आकार में होने पर भी इस शुक्रनीति का बहुत महत्व है! तथा यह प्रामाणिक भी अधिक है! इसका प्रचार प्रसार,मान्यता तथा प्रचलन सर्वाधिक है

आचार्य भृगु जी के पुत्र असुर गुरू महर्षि शुक्राचार्य हुए! ये योग विद्या के आचार्य हैं और इनकी शुक्रनीति बहुत प्रसिद्ध है एवं सामान्य जन के लिए अति लाभकारी है! यद्यपि गुरू रूप में असुरों ने इनका वरण किया था, किन्तु वे मन से भगवान के अन्य भक्त थे! असुरों के साथ रहते हुए भी ये उन्हें सदा धर्म, नीति तथा सदाचार की शिक्षा देते रहे! इन्हीं के प्रभाव से प्रहलाद, विरोचन तथा बलि आदि भगवत भक्त बने!

इनके पास मृतसंजीविनी विद्या थी जिससे ये संग्राम में मरे हुए असुरों को जीवित कर लेते थे।

शुक्राचार्य की नीति के उपदेश बहुत ही उपयोगी और अनुापालनीय है। शुक्राचार्य के महत्ता के सम्बन्ध में जैसा कि उन्होने स्वयं कहा है–

न कवे सदृशी नीतिस्त्रिषु लोकेषु विद्यते।

अर्थात कवि शुक्राचार्य जी की नीति के समान दूसरी कोई नीति तीनों लाकों में नहीं है। महाभारत तथा पुराणों में भी इनके नीतिमय उपदेशो यत्र–तत्र भरे पड़े है।

नीतिशास्त्र के ज्ञान को शुक्राचार्य जी ने राजाओं के लिए भी अत्यावश्यक बतलाया है क्योंकि प्रजा का पालन एवं दुष्टों का दमन ये दोनो राजाओं के लिए परमधर्म है और ये दोनो बिना नीतिज्ञान के नहीं हो सकते। जिस राजा के पास नीति और बल दोनों है, उसके पास सब ओर से लक्ष्मी आती है–

यत्र नीतिबल चोमे तत्र श्री सर्वतोमुखी। जो राजा अपने धर्म में निरत, प्रजाओ का पालक सात्विक यज्ञ करने वाला , शत्रुओ को जीतनेवाला दानवीर क्षमावान्, इन्द्रिय–विषयों से विमुख तथा वैराग्यवान् होता है, वह राजा को धर्मपरायण होने की सलाह देते है कि यौवन, जीवन, मन छाया, लक्ष्मी तथा प्रभूत्व ये छः– चंचल होते है, ऐसा जानकर राजा को धर्मपरायण होना चाहिए–

यौवन जीवितं चित्तं छाया लक्ष्मीश्च स्वामिता।

चंचलानि षडेतानि ज्ञात्वा धर्मरता भवेत्।।

जो राजा अपनी गोपनीयता सुरक्षित रखता है अर्थात् उसी भावी योजनाओं की जानकारी अत्यन्त गोपनीय होती है, उसे तभी लोग जान पाते है जब वे योजनाएँ अपना परिणाम दे देती है, तो ऐसे राजा की राजनीति कभी असफल नहीं होती। मानव को अपने सच्चे हित के विषय में कभी निराश नहीं होना चाहिए। आशा ही मनुष्य को जिलाती है। भगवान के प्रति विश्वास मनुष्य में असीम बल देता है और फिर उसका सत् प्रयत्न पुनः आरंभ हो जाता है। आचार्य

शुक्राचार्य के नाम से उपलब्ध शुक्रनीति नामक ग्रंथ अन्यन्त प्रमाणिक और प्रसिद्व है। इसमें लोकव्यवहार का ज्ञान राजधर्म दण्डविधान, राजा तथा उसके कर्त्तव्य, राज्यागं मंत्री–परिषद, भृत्यवर्ग, कोश, बल, राष्ट्र, वेद, पुराण, दर्शन, स्मृति आदि के लक्षणों का समावेश है। पूरी शुक्रनीति में पॉच अध्याय तथा लगभग 2200 श्लोक है। लघु आकार मे होने पर भी इस शुक्रनीति का बहुत महत्व है तथा यह प्रामाणिक भी अधिक है। इसका प्रचार–प्रसार, मान्यता तथा प्रचलन सर्वाधिक है।

आचार्य भृगुजी के पुत्र. असुर गुरू महर्षि शुक्राचार्य हुए। ये योग विद्या के आचार्य है और इनकी अतिलाभकारी है। यद्यपि गुरू रूप में असुरों ने ही इनका वरण किया था, किन्तु वे मन से भगवान के अनन्य भक्त थे। असुरों के साथ रहते हुए भ ये उन्हें सदा धर्म, नीति ताथा सदाचार की शिक्षा देते रहें। इन्हीं के प्रभाव से प्रहलाद, विरोचन तथा बलि आदि भगवत् भक्त बने।

राजधर्म एवं नीतिसंदर्भो को बताते हुए आचार्य शुक्र ने भगवान् श्रीराम को सर्वोपरि नीतिमान बताते हुए कहते हैं कि इस पृथ्वी पर भगवान राम के समान कोई दुसरा राजा नही हुआ क्योंकि उनकी नीति के द्वारा वानरों ने भी वानरों ने भी भलीभॉति उनकी भृत्यता स्वीकार कर ली थी–

न रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत्।
सुभत्यतां तु यन्नीत्या वानरैरपि स्वीकृता।।

इस नीतिवचन के द्वारा शुक्राचार्य जी ने यह संदेश दिया है कि राजाओं को राम के समान नीतिमान् बनना चाहिए और राम के समान आचरणों का अनुसरण करना चाहिए। इस प्रकार हम देखते है कि संस्कृत साहित्य में जीवन के सभी क्षेत्रों से संबंधित नीतियॉ भरी पडी है। इन नीतियों में शुक्राचार्य की शुक्रनीति अंति प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

इस प्रकार समाज के संपोषण में संस्कृत साहित्य और शुक्रनीति की उपादेयता विचारणीय है। आधुनिक विज्ञान एवं चकाचौंध के युग में भी संस्कृत साहित्य का अध्ययन हमें प्रेरणा एवं प्रकाश प्रदान करने में सक्षम एवं समर्थ है। इसी से मानवता का कल्याण होगा और धरा पर स्वर्ग का आगमन होगा। संस्कृत–साहित्य में इसी विशालता को जीवन और जगत् के नीतिगत् स्तर पर उताने का आवाहन शुक्राचार्य जैसे नीतिशास्त्रियों न अपने नीतिग्रन्थ में सूत्रबद्व करने की कोशिश की है।